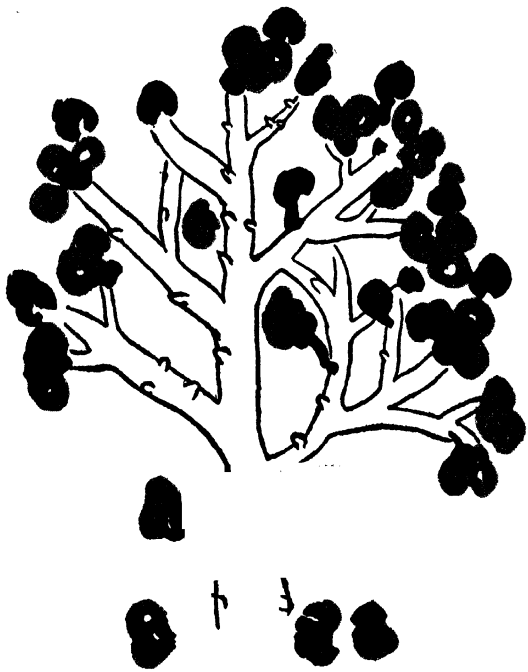

पलाश-वन

नरेन्द्र

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180456

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY
Call No. H 81.6 | N 22 Pa Accession No. Gn.H.1101
Author నారాయణ |
Title పంచవటి - నవ | 1940
This book should be returned on or before the date last marked below.

पलाश-वन

(कविताएँ : जून, १९३९—जुलाई, १९४०)

पलाश-वन

[कविताएँ : जून, १९३९–जुलाई, १९४०]

नरेन्द्र

प्रकाशगृह
इलाहाबाद

प्रथम संस्करण
अगस्त, १९४०

Checked 1965

[redacted] सवा रुपया

Checked 1969

मुद्रक
रामप्रसाद,
शारदा प्रेस, प्रयाग

वीरेश्वर, केदार और शमशेर को,
हिन्दू बोर्डिंग हाउस के दिनों की
सुख-स्मृति में

क्रम

शीर्षक	पृष्ठ
पलाश	१
तुम आती हो	२
मेरी याद	३
तुम	४
रूप-शिखा	५
आत्म-परिचय	६
चाँदनी	७
चाँदनी में भ्रम	८
आत्म-समर्पण	१०
खुली हवा	११
साथी	१४
सामने का नीम	१७
बीती रात	१८
मार्ग मेरा	१९
खंडित पात्र	२०
दीपावली	२१
अल्मोड़े की युवती	२३
कूर्मांचल	२५
कौसानी	२९
रानीखेत की रात	३७
मन समझाने की बात	३८
आश्वासन	४१
जीवन का साथी	४३
अच्छा ही हुआ—	४४
परदेसवासी मीत	४६
मीत तुम !	४७
हुआ न तेरा ही कोई	४८

मेरा मन ५०
इच्छाएँ ५१
सुख-दुख ५२
एक तर्क ५४
सोना या खार ? ५५
आत्म-बोध ५७
सान्त्वना ५८
अपने से ५९
भेद ६०
जिज्ञासा ६१
जीवन-धारा ६२
आषाढ़ ६४
फागुन की आधी रात ६६
वासना की देह ६७
ज्येष्ठ का मध्याह्न ६९
पंखड़ियाँ ७२

पलाश

आया था हरे-भरे वन में पतझर, पर वह भी बीत चला !
कोंपलें लगीं, जो लगीं नित्य बढ़ने, बढ़ती ज्यों चन्द्रकला !

चम्पई चाँदनी भी बीती, अनुराग-भरी ऊषा आई,
जब हरित-पीत पल्लव-वन में लौ-सी पलाश-लाली छाई !

पतझर की सूखी शाखों में लग गई आग, शोले दहके !
चिनगी-सी कलियाँ खिलीं और हर फुनगी लाल फूल लहके !

सूखी थीं नसें, बहा उनमें फिर बूँद बूँद कर नया ख़ून,
भर नया उजाला डालों में खिल उठे नए जीवन-प्रसून !

अब हुई सुबह, चमकी कलगी, दमके मख़मली लाल शोले !
फूले टेसू—बस इतना ही समझे पर देहाती भोले !

लो, डाल डाल से उठी लपट ! लो, डाल डाल फूले पलाश !
यह है वसंत की आग, लगा दे आग जिसे छू ले पलाश !

लग गई आग; वन में पलाश, नभ में पलाश, भू पर पलाश !
लो, चली फाग; हो गई हवा भी रंगभरी छू कर पलाश !

आते यों, आएँगे फिर भी वन में मधुऋतु-पतझार कई,
मरकत-प्रवाल की छाया में होगी सब दिन गुज़ार नई !

तुम आती हो

तुम आती हो तो
बादल-सा हट जाता है,
सब आसमान खुल जाता है,
खिल जाती है पल में प्रसून-सी नरम धूप !

करुणा की किरणों के नीचे
लेटीं सुख से आँखें मीचे
हँसती हैं सतरंगी बूँदे—सस्मित आनन पर
आँसू के मोती अनूप !

तुम आती हो—
घन-सा विषाद घुल जाता है,
अवसाद शेष घुल जाता है,
छाया मलीन पल में विलीन हो जाती है—हो जाता है
पल में मेरा कुछ और, और से और रूप !

मेरी याद

अब तो तुम्हें और भी मेरी याद न आती होगी !

हरे-भरे होंगे वन-उपवन
बीत चुके हैं दिन पतझर के,
कहाँ याद आते होंगे अब
मेरे अश्रु-हास पल भर के;

आज तुम्हारे स्वर में स्वर भर कोयल गाती होगी !

कटहल, बेल, नीम महके हैं
खिली कामिनी फूलों वाली,
रँगी खड़ी सेंमल, पलाश औ'
अमलतास की डाली-डाली;

सोने की गुलमोर लोचनों में छाजाती होगी !

गंध रूप-रँग की यह दुनिया
जो अग-जग फल-फूल रही है,
भूल झकोरों में माधव के
सब पिछले दुख भूल गई है;

आज लगे बैसाख नई अँबिया गदराती होगी !

'कौन देश से आवेंगे पिय ?'
हँस-हँस कहती होंगी सखियाँ
घेर तुम्हें आँगन में बैठीं
आमी चीर उछाल बिजलियाँ;

तुम्हें खीझ, फिर कभी हँसी बरबस आजाती होगी !

तुम

तुम सोने के रँग से उजली, सरसों के फूलों से हलकी,
तुम प्रतनु—किरन चन्दा की ज्यों, निर्मल—ज्यों बूँद तुहिन-जल की,
मेरे सूने जीवन-नभ की तुम विरल चाँदनी, रत्न-कनी.
उर-सीपी के मोती! तुमसे मोती में मुक्ताभा झलकी!

कर एक सुनहली रेखा में सीमित सब अग-जग की छवि को,
जाने किस जादू से बंदी कर नयनों में शशि को, रवि को,
तारों को जैसे मोह लिया फिर गूँथ लिया आभरणों में,
कर लिया बंद उर-शतदल में मकरन्द-मुग्ध अपने कवि को!

उठती जब नमित चकित चितवन विद्युत सलज्ज खिल छिप जाती,
पाटल की लाल पँखुरियों-सी वह अरुण उषा शरमा जाती,
मधु अधरों पर संकोच-हिचक की तरल रेख है खिची एक—
हिलती ज्यों जल में लहर लहर जब स्मिति उन अधरों पर आती!

तुम चलीं, साथ ले चलीं लहर, लहराती जिन पर मंद वात,
पद-चाप बनी कल-कल स्वर-ध्वनि, पदचिन्ह बन गए नीरजात,
पीछे-पीछे लहरों पर ज्यों छाया-सी लहराती वेणी,
शशिकिरण सोहतीं लहरों पर सुन्दरतर जिनसे शात गात!

थे जो दुराव से दबे भाव बन गए गीत, करुणा छलकी,
जैसे हँसमुख फूलों में मिट्टी हँसी प्रिया के पदतल की!
प्रिय, मेरा स्नेहाकुल अन्तर युग-युग से खिलने को आतुर,
क्या उसे मिलेगी स्नेह-स्निग्ध नीलाम्बर-छाया अञ्चल की?

तुम सोने के रँग से उजली, सरसों के फूलों से हलकी,
तुम प्रतनु—किरन चन्दा की ज्यों, निर्मल—ज्यों बूँद तुहिन-जल की,
मेरे सूने जीवन-नभ की तुम विरल चाँदनी, रत्न-कनी.
उर-सीपी के मोती! तुमसे मोती में मुक्ताभा झलकी!

रूप-शिखा

तुम दुबली-पतली दीपक की लौ-सी सुन्दर !

मैं अंधकार,
मैं दुर्निवार,

मैं तुम्हें समेटे हूँ सौ-सौ बाँहों में, मेरी ज्योति प्रखर !

आपुलक गात मैं मलयवात,
मैं चिर-मिलनातुर जन्मजात,
तुम लज्जाधीर शरीर-प्राण
थर-थर कम्पित ज्यों स्वर्ण-पात,

काँपती छायावत् रात, काँपते तम-प्रकाश आलिङ्गन भर !

आँखों से ओझल ज्योति-पात्र;
तुम गलित स्वर्ण की क्षीण धार,
स्वर्गिक विभूति उतरीं भू पर,
साकार हुईं छवि निराकार,

तुम स्वर्गङ्गा, मैं गंगाधर, उतरो प्रियतर सिर आँखों पर !

नलकी में झलका अंगारक,
बुंदों में गुरु-उशना तारक,
शीतल शशि-ज्वाला की लपटों-से
वसन, दमकती द्युति चम्पक,

तुम रत्न-दीप की रूप-शिखा, तन स्वर्ण-प्रभा, कुसुमित अम्बर !

आत्म-परिचय

थे भ्रमरावलि-सी वेणी में बँध जाने को लालायित जो
सुरभित मेरा ही स्नेह, सुमुखि, निशिगंधा के उन फूलों में,
साड़ी का पल्ला थाम तुम्हें जो बरबस खींच लिया करते
मेरी ही तो उर-आकांक्षा हो उठी ढीठ उन शूलों में !

जो विशद तुम्हारे हृदय-व्योम में जुगनूँ-सी जलतीं-बुझतीं
आशाएँ औ' अभिलाषाएँ मेरी, दीपित नभ-तारों में,
तुम-सी, लहरी-सी गतिवाली सरि का जो आलिंगन करते
युग-युग से मेरी युग बाँहें फैलीं उन कूल-किनारों में !

क्यों इतनी दूर-दूर भटकूँ तुमको अपना परिचय देने ?
मैं अति लघु, क्या नभ के तारों से, कूल-किनारों से समता ?
मैं निशिगंधा का फूल नहीं, हँसमुख गुलाब का शूल नहीं,
पद-पंकज का परिमल बनती जो पथ की रज, मैं वह ममता !

चाँदनी

चाँदनी आज कितनी सुंदर,
समदृष्टि हुई छबि की सब पर !

किसने जग के दृग-पलकों में सुख का सपना साकार किया ?

राकेश गगन के आँगन में,
मेरे शशि तुम मेरे मन में,

भावों से भर भव का अभाव किसने संसार सँवार दिया ?

फूटा उर में निःस्वन निर्झर,
यह भू मनहर, वह नभ निर्भर,

क्या तुमने नयनों में मुसका चुपके से विश्व निहार लिया ?

चाँदनी में भ्रम

वह अचेतन चेतना-सी जागंती जो
स्वप्न बन सोते जगत में चाँदनी,
स्नेह की सुरभित नशीली साँस-सी वह
बस गई मेरे हृदय में चाँदनी !

पास आती और पल में दूर जाती,
खेल यों रातों खिलाती चाँदनी !
बात वह करती न, सोने भी न देती
मुसकुराते मौन वाली चाँदनी !

चाहती जब टोहती मन, मोहती मन
सौंपती सर्वस्व जैसे चाँदनी !
चाहती जब अपरिचित अनजान बनती,
देखता मैं दूर बैठा चाँदनी !

पास से जाती, न मन से दूर जाती,
है न क्या मेरी प्रिया-सी चाँदनी ?
विकल जल-सा रात भर मुझको जगाकर,
पास आ पागल बनाती चाँदनी !

फूल में ज्यों गंध भरती बंध हरती,
भर गई मन-से सदन में चाँदनी !
सब जगह सैलाब जैसी, आब जैसी,
भर गई निर्भर विजन में चाँदनी !

चाँदनी के पूर में सब विश्व डूबा
पैरती जिसमें परी-सी चाँदनी !
एक मन, दो पुतलियाँ क्या, डुबा आई
व्योम के लाखों नखत यह चाँदनी !

कहाँ आहत विश्व दुख की आह भरता,
आ गई सुख की प्रलय-सी चाँदनी !
कौन अब जग में असुन्दर ? कालिमा जब
धो गई सब के हृदय की चाँदनी !

लो, अकूल प्रवाहिनी वह सिमट बैठी
मालती के फूल में अब चाँदनी !
कहीं मेरे स्पर्श से कुम्हला न जाए
सूक्ष्म है मेरी प्रिया-सी चाँदनी !

खुली खिड़की से अचक चुपचाप आती
वह हृदय के चोर जैसी चाँदनी !
मधुर मद से मूँद देती दृग अचानक
खिलखिला पल में बिलाती चाँदनी !

खोजता था मैं विजन में, पर न मन में
देखता था बस गई थी चाँदनी !
वह वहीं घर में कभी से मुसकुराती
खड़ी आँगन में अकेली चाँदनी !

चाँदनी मधुयामिनी की कामिनी-सी
उर खिलाती, दुख भुलाती चाँदनी !
गर्विता है, रूठ जाती, मान करती,
सुधि जगा फिर से रुलाती चाँदनी !

मधुर स्मिति से आर्द्र दृग मेरे हँसाती,
क्या न मेरी प्रिया-सी यह चाँदनी ?
डूबते दिल को उबार सँवार कहती,
'जल नहीं हूँ, ज्योति हूँ मैं चाँदनी !'

आत्म-समर्पण

सौ टूक हो गया चाँद
टूट लहरों पर,
हो गया हृदय जैसे
तुम पर न्यौछावर !

जल-जुगनू बनता चन्द्रहास
ज्यों जल पर,
उड़ गया, प्राण, सौ भावों
में मम अन्तर !

तुम ज्योति, भाव ये
ज्योति-शलभ बन बन कर,
भर रहे तुम्हारे
ज्योति-कणों से अम्बर !

लौ चूम शलभ
बन जाता जैसे दीपक,
मेरी मिट्टी से खिलते
पाटल चम्पक !

पद चूम, हृदय की
पावक बनती जावक,
बन फूल बिहँसते
पाँवों में नभ-तारक !

ये फूल रहें उन
चरणों में चिर-अपलक !
सौन्दर्य-शील, जिन
चरणों में नत-मस्तक !

खुली हवा

खुली हवा है, खिली धूप है,
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी !
आओ सारस की जोड़ी-से
निकल चलें हम दोनों प्राणी !

उड़े चलें खेतों के ऊपर
नीचे कोमल नरम खूँद है,
जहाँ शरद के मुक्त हास-मिस
हँसी ओस की बूँद-बूँद है !

उड़ें और आगे, देखो वह
कब से हमको पास बुलाते,
अलग-अलग, फिर एक साथ सब
बन के तरु सौ शीश हिलाते !

फैली थीं मैली धोती-सी
बन में जो बरसाती नदियाँ,
लगतीं अब मरकत-महलों के
बीच छिकीं चाँदी की गलियाँ !

ज्यों उन्मुक्त हृदय स्वागत में,
लेटे कहीं शान्त निर्मल सर,
मुग्धा के निर्दोष दृगों-से
अपलक बाट देखते दिन भर !

नगर-ग्राम जल-जंगल के भी
आगे दृष्टि जहाँ तक जाती,
देखोगी वह ठाँव जहाँ पर
सृष्टि गर्व से शीश उठाती !

सटे खड़े ढिग नीले नभ के
इन्द्रनील घन के घर पर्वत,
हों हाथों में चन्द्रहार ज्यों,
रजत-स्फार-से निर्झर निःसृत !

चलो उड़ चलें दूर देश हम
वन-पर्वत करते अगवानी,
खुली हवा है, खिली धूप है,
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी !

कर अस्ताचल पार, दीखता
निद्रित नग्न प्रशान्त हिमशिखर,
रवि-शशि-शोभित मुकुट बाँधतीं
दिवा-निशा नित नई ज्योति भर !

विजयहार बन कर स्वर्गंगा
लिपटी जिससे ललक पुलक कर,
उसके आगे दृष्टि न जाती
नौओं ओर अगम नीलाम्बर !

गंगा के सँग लौट पड़ेंगे
तुरत चाँदनी-भरी रात में,
पूनों साथ चलेगी भर कर
मोती चाँदी की परात में !

शरत्-पूर्णिमा में देखोगी
भरता और भरे में ईश्वर !—
निमिष-निमिष सुन्दरतर होगी
निशि सब सुन्दरता समेट कर !

'टूट पड़ें हम भी' पूछेंगे
बड़ी-बड़ी बूँदों-से तारे,

चाँद उतर आएगा भू पर
देखोगी तुम नदी किनारे !

चल देंगे फिर नई शक्ति भर
बहला मन गंगा के तट पर,
चंद्रहास की नाव बहा कर
वारि-वीचियों की सलवट पर !

फैला अनायास पंखों को
धीरे धीरे चढ़ अम्बर पर,
बढ़ धीरे धीरे गृह-पथ पर
रात रहे आजाएँगे घर !

आज धूप-सी खिली चाँदनी
दुनिया कितनी सुन्दर, रानी !
निकल चलें हम खुली हवा में
दिवा-निशा-से दोनों प्राणी !

साथी

मैंने देखा, मैं जिधर चला,
मेरे सँग सँग चल दिया चाँद !

घर लौट चुकी थी थकी साँझ;
था भारी मन, दुर्बल काया,
था ऊब गया बैठे बैठे—
मैं अपनी खिड़की पर आया !

टूटा न ध्यान, सोचता रहा
गति जाने अब ले चले किधर !
थे थके पाँव, बढ़ गए किन्तु
चल दिए उधर, मन हुआ जिधर !

पर जाने क्यों, मैं जिधर चला
मेरे सँग सँग चल दिया चाँद !
पीले गुलाब-सा लगता था
हलके रँग का हल्दिया चाँद !

साथी था, फिर भी मन न हुआ
हलका, हो गया भार दूना !
वह भी बेचारा एकाकी
उसका भी जीवन-पथ सूना !

क्या कहते, दोनों ही चुप थे,
अपनी-अपनी चुप सहते थे !
दुख के साथी बस देख-देख
बिन कहे हृदय की कहते थे !

था ताल एक; मैं बैठ गया,
मैंने संकेत किया, 'आओ,
रवि-मुकुर ! उतर आओ अस्थिर
कवि-उर को दर्पण बन जाओ !'

मैं उठा, उठा वह; जिधर चला,
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद !
मैं गीतों में, वह ओसों में
बरसा औ' रोया किया चाँद !

क्या पल भर भी कर सकी ओट
झुरमुट या कोई तरु-डाली,
पीपल के चमकीले पत्ते
या इमली की झिलमिल जाली ?

मैं मौन विजन में चलता था,
वह शून्य व्योम में बढ़ता था;
कल्पना मुझे ले उड़ती थी,
वह नभ में ऊँचा चढ़ता था !

मै ठोकर खाता, रुकता वह;
जब चला, साथ चल दिया चाँद !
पल भर को साथ न छोड़ सका
ऐसा पक्का कर लिया चाँद !

अस्ताचलगामी चाँद नहीं क्या
मेरे ही टूटे दिल-सा ?—
टूटी नौका-सा डूब रहा,
जिसको न निकट का तट मिलता !

वह डूबा ज्यों तैराक थका,
मैं भी श्रम से, दुख से टूटा !
थे चढे साथ, हम गिरे साथ,
पर फिर भी साथ नहीं छूटा !

अस्ताचल में ओझल होता शशि
मैं निद्रा के अञ्चल में,
वह फिर उगता, मैं फिर जगता
घटते-बढ़ते हम प्रतिपल में !

मैंने फिर-फिर अज़मा देखा
मेरे सँग-सँग चल दिया चाँद !
वह मुझ-सा ही जलता-बुझता
बन साँझ-सुबह का दिया चाँद !

सामने का नीम

एक वह तरु नीम मुझ-सा ही अकेला खड़ा है जो सामने—
पत्तियों से, बौर से सब
भर गया तन, ख़ुश हुआ मन,
बौर की मधुगंध फैली
झर गए ज्यों जीर्ण बन्धन,
एक मैं हूँ, सूखता तन और मन में छलकती छल-व्यथा भर दी राम ने!

नीम क्या, रवि से बड़ा कवि,
पर कहाँ अब वह, कहाँ मैं!
नीम जड़, मैं मनुज चेतन
उठ रहा वह, गिर रहा मैं!
मैं समाया गर्त में अब, शर्म से मुझको दबाया हर जतन, हर काम ने!

चैत की मधु चाँदनी में
नीम देखे मधुर सपना,
और मैं? मैं ज्यों दिवस के
चाँद-ऐसा प्रेत अपना!
सार जीवन का भुलाया, भार जीवन का बढ़ाया हर घड़ी, हर याम ने!

देखता हूँ दूर बैठा
नीम की मञ्जरित डाली,
वायु जिससे खेलती, पिक ने
जिसे अपनी बना ली;
तू अकेला है अकेला, कहा मुझसे हर सुबह, हर शाम ने!

आज कड़वा नीम, मीठी
गंध अग-जग को लुटाता,
और मैं छिद वेदना से
खार के आँसू बहाता!
व्यंग को कुछ और भी कड़वा बनाया आज इस मेरे निरर्थक नाम ने!

बीती रात

कुम्हला गई चाँदनी जैसे निशिगंधा का फूल !

तारे चूने लगे, फूल ज्यों झरते शेफाली से;
अस्ताचल पर गिरा चाँद, ज्यों पका आम डाली से;

झीना हुआ चाँद-तारों से नभ का नील दुकूल !

कलियाँ जागीं, चिड़ियाँ जागीं, जाग उठी मलयानिल;
शरमा रही उषा, शरमातीं आँखों से आँखें मिल;

डूबा शुक्र—सुबह का सपना—नभ-नयनों में झूल !

जग से जाते-जाते निष्प्रभ हुआ चाँद का मुखड़ा,
चलती-फिरती दुनिया रोने लगी काम का दुखड़ा,

दिवा-प्रभा से दबी विभा, ज्यों दबी ओस से धूल !

एक ओर चाँदनी दूसरी ओर स्वर्ण-अरुणाभा,
जिनके बीच जगत की गति-सी बहती धुँधली द्वाभा,

मिलन-विरह या निशा-उषा दो रजत-स्वर्ण उपकूल !

मार्ग मेरा

अगम नभ-सा मार्ग मेरा, शून्य नभ-सा मार्ग मेरा,
हृदय खंडित इन्दु-सा है—
इन्दु, पागल इन्दु, चञ्चल इन्दु-सा है !

सदा घटता और बढ़ता,
प्रिय उसे जग की तरलता,
चेतना की प्यास लेकर
सदा चल जल पर मचलता !

वही खंडित फूल-प्याला
विकल चलदल पर विकम्पित,
भ्रांति का संदेशवाहक,
जन्मदाता से सशंकित !

विम्ब वह भी, चाहता पर
विश्व पर प्रतिविम्ब छोड़े,
टूटता जाए स्वयम्, पर
सलिल से सम्बन्ध जोड़े !

नित अनिश्चित घूमती-फिरती नदी-सा मार्ग मेरा,
हृदय खंडित इन्दु-सा है—
इन्दु, पागल इन्दु, चञ्चल इन्दु-सा है !

खंडित पात्र

कैसे बुझाऊँ प्यास—मेरा हृदय खंडित पात्र !

मृत्यु से माँगा हलाहल
प्यास से होकर विकल जब,
हँसी श्यामा सुन्दरी वह
भर दिया प्याला लबालब,

लब न छू पाए गरल, यह हृदय खंडित पात्र !

बेबसी की बात है यह
मैं न जीवित ही, न मृत ही,
चाह थी पर जब अमृत की
था मिला मुझको अमृत भी,

किन्तु खंडित इन्दु-सा यह हृदय खंडित पात्र !

भूल अपनी प्यास मैंने
दे उन्हें भी स्नेह देखा,
चंद्र-रेखा भले ही बदले
न बदली भाग्य-रेखा,

मैंने दिया जिसको हृदय, वह हृदय खंडित पात्र !

दीपावली

घर घर जली दीपावली !
आज तू भी मिलन का दीपक सँजोले, बावली !

पहन नौलख हार, युग कर—
लिए दीपित थाल, तन पर—
डाल हीरक-खचित अम्बर,
देख कब से खड़ी तेरे द्वार श्यामा साँवली !
घर घर जली दीपावली !

दीप पथ के क्षुद्र कण हैं,
आरती-रत आभरण है,
बढ़ रहे किसके चरण हैं ?
गोद-गृह भर श्री चली, प्रति पग खिली रत्नावली !
घर घर जली दीपावली !

स्नेह-सिञ्चित मृत्तिका-सम
हो उठा उर्वर सघन तम,
खिल उठा उपवन मनोरम,
वर्तरी के वृन्त हैं, जिन पर खिलीं ज्योतित कली !
घर घर जली दीपावली !

ज्योति के शत पुष्प खिलते,
ज्योति से जब नयन मिलते,
वात-कम्पित फूल हिलते,
तम अमा का, ज्यों शमा के फूल पर भ्रमरावली !
घर घर जली दीपावली !

तिमिर-माया-जाल को हर,
ज्योति से जीवन गया भर,
रहेगा ज्योतित निरन्तर,
ज्योति-चुम्बन से हृदय के दीप की बाती जली !
घर-घर जली दीपावली !

अल्मोड़े की युवती

फैला है बन कर शुभाशीष
नीलाम्बर खुला धुला ऊपर,
हैं चमक रहे नीचे तृण-तरु,
गृह-बन-पर्वत सस्मित भू पर !

उस महाकाश की शोभा है
आभानिकेत ज्यों उदित सूर्य,
कूर्माचल की निधि अल्मोड़ा,
कूर्माचल का सांस्कृतिक सूर्य !

पर नभ का रवि देता प्रकाश
अपने शशि को, अल्मोड़े की
आभा सौभाग्यवती युवती,
वह इन्दुमती अल्मोड़े की !

अल्मोड़े की वह इन्दुमुखी
है सहज भाव से खड़ी द्वार,
ज्यों जन्म सुफल, पुलकित पुष्पित
सामने खड़ा है गुलबहार !

है खिली धूप, ज्यों खिला रूप,
सुन्दर सुकुमार शरीर गौर !
घर निखर रहा, जैसे यौवन,
हँसतीं दीवारें, द्वार, पौर !

पहने सफ़ेद कुर्ती, ऊपर से
लाल-लाल सादी धोती,
अल्मोड़े की युवती, प्रवाल
की सीपी में मञ्जुल मोती !

भर गई देह, भर गई माँग
चोटी लटकी है घुटनों तक,
शोभित गौरा के मस्तक पर
अक्षय सुहाग का लाल तिलक !

शिव के मस्तक पर बालचंद्र
गिरिसुता-माथ पर बालारुण,
शाश्वत हो यह सौभाग्य-सूर्य
शाश्वत,गृह-शोभा ज्योति अरुण !

कूर्माचल

जिसकी शोभा को देख अचल हो गए अचल,
वह कूर्माचल !
जिसके गौरव से गर्वोन्नत ये गिरि-पर्वत,
वह कूर्माचल !
करते हैं जिसका कीर्तिगान नदि-नद महान,
वह कूर्माचल !
निश्छल निर्झर-से नारी-नर जिसके सुन्दर,
वह कूर्माचल !

है कूर्म आदि-आधार धरा का, आभूषण
पर कूर्माचल !
है जिस पर स्थित नभ कूर्म-सदृश शाश्वत श्यामल,
वह कूर्माचल !
मरकत-पर्वत, मोती की लड़ियों-से निर्झर
रल-मल झल-मल,
मणि-जटित मुकुट संयुक्तप्रान्त का ज्योतिकान्त
वह कूर्माचल !

नीले नभ की चञ्चल छाया जिसकी निर्मल
नदियों का जल,
जिसके पर्वत प्रतिविम्बित ज्यों नभ के बादल,
वह कूर्माचल !
वह वसुन्धरा औ' स्वर्गलोक का लाल लाड़ला
कूर्माचल !
भू-स्वर्ग मुझे, तपसी को बना स्वर्ग-सीढ़ी
वह कूर्माचल !

पर्वत पर तरु, तरु पर तरु, पर्वत पर पर्वत,
फिर नभ निर्मल,
ज्यों माँ के घुटनों पर चढ़ता जाता शिशुवत्
वह कूर्मांचल !
लो, स्वयम् बना अब सिद्धराज स्थिर शान्त अचल
वह कूर्मांचल !
उन्नत ललाट तप-तेजस्वी, शिर हिम-किरीट,
नभ छत्र अटल !

देवाधिदेव, सुर, मुनि, किन्नर, मानव, वानर
का कूर्मांचल !
मानवी मधुरिमा की पूनों की सकल कलाएँ
जिसमें पल,
पार्वती, किन्नरी, परी, अप्सरा, सहोदरा—
खिलतीं उज्ज्वल !
साहित्य कला का उद्गम वह सरिताओं का,
वह कूर्मांचल !

आतप के कुलिश-शरों से जब हो जाता है
वसन्त घायल,
वह जिसके आँचल में आश्रय पा जी उठता
वह कूर्मांचल !
जिसकी छाती पर सिर धर कर सुख-दुख की कह
रोते बादल,
आ जिसके वन में आहें नित भरती समीर,
वह कूर्मांचल !

जिसके सुन्दर विश्वासों-से दृढ़ सरल चीड़,
वह कूर्मांचल,
जिस देवभूमि में देवालय-से देवदारु
सुरभित शीतल,
औ' बुद्ध बाँज जिनमें जीवन की धूप-छाँह,
वह कूर्मांचल !
सुन्दर शुभ भावों-से जिसके फल-फूल-विहग,
वह कूर्मांचल !

छिछली नदियों के तीर जहाँ छिड़ती मछुओं की
तान तरल,
अब भी जिसके देहातों में बजती वंशी
वह कूर्मांचल !
यों तो चिर-सुन्दर निखिल सृष्टि, पर सब से सुन्दर
कूर्मांचल !
वह सुन्दर से सुन्दरतर है, सुन्दरतम है
वह कूर्मांचल !

हे कूर्मांचल ! तेरी सेवा को लालायित है
अचल अचल !
पक्षीकुल कल रव में गाते, सरिताएँ गुण गातीं
कल कल !
नित रजत-स्फार के हार बना निर्झर झरते
रल-मल झल-मल !
घाटी बन गई क्षीर-सागर जब पूजा को
आए बादल !

आता वसन्त, लाता पूजन को रुचिर फूल,
अति मधुमय फल !
बहती समीर, बहती तरु तरु के पत्रों से
वन्दना विकल !
ऋषि-मुनि अर्पित करते अपने पावन जीवन के
दुर्लभ पल !
अत्यन्त अकिञ्चन कवि क्या दे ? है प्रणत भाल मम,
कूर्माचल !

कौसानी

यह नई धरा, आकाश नया,
यह नया लोक मिल गया मुझे !
थी आत्मा जिसके हित अशान्त
वह शान्त लोक मिल गया मुझे !

इसके तरुओं की छाँह नई
इसकी बयार में नया परस,
कौसानी का जादू ऐसा—
दो-चार बरस, दो-चार दिवस !

शायद न कभी मुरझाते हों
जीवन-डाली से यहाँ फूल,
दो-चार बरस के सुख-दुख मैं
दो-चार दिवस में गया भूल !

दो-चार बरस रहता यदि मैं
दो-चार दिवस-सा ही लगता,
कौसानी का जादू ऐसा
मैं कभी न पल-छिन गिन सकता !

है यहाँ नीर में नया स्वाद,
चिड़ियों के रव में नया चाव,
मैं भूल गया अपने अभाव,
भर गए हृदय के सभी घाव !

जो जन-रव में न मिली, न मिली
जो किन्नरियों के कल रव में,
वह शान्ति मुझे मिल गई यहाँ
इस कौसानी के नीरव में !

मन के सब शंका-शोक बुझे
हो गया विश्व फिर नया मुझे !
यह नई धरा, आकाश नया,
यह नया लोक मिल गया मुझे ?

कोसी की हरित-भरित घाटी
करती है सुख से शान्त शयन,
प्रहसित संकुचित गात शोभित
नव-धान-वरन परिधान पहन !

सिरहाने रक्खा शीश-मुकुट
वह कहलाता है कौसानी,
जिसके कारण कहलाती वह
कूर्मांचल भर की पटरानी !

कोसी की हरित भरित घाटी—
हम उसकी करवट से निकले,
जब पार कर चुके सोमेश्वर
ज्यों सहसा जगे पुण्य पिछले !

हम दौड़ रहे थे द्रुत गति से
सामने खड़ी थी कौसानी,
उस क्षण न्यौछावर थे बादल
था बरस रहा रिम-झिम पानी !

जड़ धन क्या, मैं क्या, उस छवि पर
न्यौछावर हो जाते ज्ञानी,
मैं मंत्रमुग्ध सँभला कि तुरत
आ गई स्वप्नवत् कौसानी !

थी नई धरा, आकाश नया,
था नया लोक मिल गया मुझे !

वह छिना हुआ छवि का सपना,
फिर कवि अपना मिल गया मुझे !

यह गिरि गिरिजा कौसानी की
सामने पड़ा शिव का पड़ाव,
कौसानी और हिमालय में
तिल भर न परस्पर उर-दुराव !

वह सब से ऊँची, आस-पास
पर्वत-प्रदेश ज्यों विनतमाथ,
उत्तर में कौसानी की छाया
में सनाथ हैं बैजनाथ !

ज्यों हरे रेशमी दामन-सी
घेरे उर्वर घाटियाँ पड़ीं,
कुछ मुक्त नील अलकों-सी
जिन पर पड़ी हुई हैं निर्झरिणी !

यह तपोभूमि कौसानी है
तप की जीवित जाग्रत महिमा,
है कौसानी में मूर्तिमान
तप-निरत साधनामयी उमा !

नंदादेवी के तुङ्ग शिखर से
देख देख शोभा शंकर,
हो गए हिमालय में विजड़ित
तज ताण्डव नर्तन प्रलयंकर !

इस देवभूमि कौसानी में
आलोक नया मिल गया मुझे !
यह नई धरा, आकाश नया,
यह नया लोक मिल गया मुझे !

मैं महाभाग, बापू के मन की
कौसानी मिल गई मुझे !

हिन्दी के तेजस्वी लक्ष्मण*
की धाय बनी यह कौसानी,
छिन गई गोद जब जननी की
थी यह कौशल्या कल्याणी !

हिन्दी का तेजस्वी लक्ष्मण
कौशल्या के आँचल में पल,
बन गया राम-सा विनयशील,
विक्रमी, मनस्वी, धीर, अचल !

जब मिली चुनौती, रूढ़िग्रस्त
शिव-धन्वा पल में तोड़ दिया,
शत परशुराम नित क्रुद्ध हुए
उसने कविता-पथ मोड़ दिया !

कर धनुष-भंग पल्लव-पिनाक रच
कवि ने नव-निर्माण किया,
फिर काव्य-सुनीता सीता का
जब वरण किया वनवास लिया !

हिन्दी के तेजस्वी लक्ष्मण को
बना दिया विक्रमी राम,
यह कौशल्या की पुण्य-गोद-सी
है कौसानी पुण्यधाम !

---

* आशय श्री सुमित्रानन्दन पंत से है, कौसानी जिनकी जन्मभूमि है। पंत जी की माता का देहान्त पुत्र-जन्म के कुछ ही घंटे बाद हो गया था।

यह रत्न-प्रसू कौसानी है
जो सहज आज मिल गई मुझे !
ज्यों बिना यत्न साकार स्वप्न-सी
कौसानी मिल गई मुझे !

है संज्ञा-शून्य व्योम शोभा लख,
मौन मूक नगपति नगेन्द्र !
उसका कैसे गुण-गान करे
जो व्यक्ति नाम का ही नरेन्द्र !

विद्युत के दीप जला बादल
संकीर्तन-रत कर-ताल बजा,
पूनों पहनाती विजयमाल—
दो इन्द्रचाप ले हार सजा !*

रवि-थाली में धर धूप-दीप
आरती भारती भी उतार,
वंदना कर रही हो जिसकी
कवि के उर में मूरत सँवार,

उस देव-भूमि की गुण-गाथा
गाऊँ भी तो कैसे गाऊँ ?
किस पारिजात से भाव-पुष्प
मैं उसके पूजन को लाऊँ ?

अनुभूति इन्द्रियों की सीमित,
भाषा की अक्षमताएँ है,

---

* चाँदनी रात में इन्द्रधनुष का यह अद्भुत दृश्य कौसानी से अक्सर देखा जाता है। इन्द्रधनुष और सामने हिम पर उसकी छाया, दोनो मिल कर मालाकार प्रतीत होते हैं।

मैं महाभाग, बापू के मन की
कौसानी मिल गई मुझे !

हिन्दी के तेजस्वी लक्ष्मण*
की धाय बनी यह कौसानी,
छिन गई गोद जब जननी की
थी यह कौशल्या कल्याणी !

हिन्दी का तेजस्वी लक्ष्मण
कौशल्या के आँचल में पल,
बन गया राम-सा विनयशील,
विक्रमी, मनस्वी, धीर, अचल !

जब मिली चुनौती, रूढ़ियस्त
शिव-धन्वा पल में तोड़ दिया,
शत परशुराम नित क्रुद्ध हुए
उसने कविता-पथ मोड़ दिया !

कर धनुष-भंग पल्लव-पिनाक रच
कवि ने नव-निर्माण किया,
फिर काव्य-सुनीता सीता का
जब वरण किया वनवास लिया !

हिन्दी के तेजस्वी लक्ष्मण को
बना दिया विक्रमी राम,
यह कौशल्या की पुण्य-गोद-सी
है कौसानी पुण्यधाम !

---

* आशय श्री सुमित्रानन्दन पंत से है, कौसानी जिनकी जन्मभूमि है। पंत जी की माता का देहान्त पुत्र-जन्म के कुछ ही घंटे बाद हो गया था।

यह रत्न-प्रसू कौसानी है
जो सहज आज मिल गई मुझे !
ज्यों बिना यत्न साकार स्वप्न-सी
कौसानी मिल गई मुझे !

है संज्ञा-शून्य व्योम शोभा लख,
मौन मूक नगपति नगेन्द्र !
उसका कैसे गुण-गान करे
जो व्यक्ति नाम का ही नरेन्द्र !

विद्युत के दीप जला बादल
संकीर्तन-रत कर-ताल बजा,
पूनों पहनाती विजयमाल—
दो इन्द्रचाप ले हार सजा !*

रवि-थाली में धर धूप-दीप
आरती भारती भी उतार,
वंदना कर रही हो जिसकी
कवि के उर में मूरत सँवार,

उस देव-भूमि की गुण-गाथा
गाऊँ भी तो कैसे गाऊँ ?
किस पारिजात से भाव-पुष्प
मैं उसके पूजन को लाऊँ ?

अनुभूति इन्द्रियों की सीमित,
भाषा की अक्षमताएँ है,

---

* चाँदनी रात में इन्द्रधनुष का यह अद्भुत दृश्य कौसानी से अक्सर देखा जाता है। इन्द्रधनुष और सामने हिम पर उसकी छाया, दोनो मिल कर मालाकार प्रतीत होते हैं।

वर्णनातीत है पर वह छवि
जिसकी न कहीं सीमाएँ हैं !

मैं भूल गया निज सीमाएँ जिससे
वह छवि मिल गई मुझे !
जो दुर्लभ थी हो गई सुलभ
सच, कौसानी मिल गई मुझे !

रानीखेत की रात

शान्त है पर्वत-समीरण, मौन है यह चीड़ का वन भी !

बालकों की बात-सी आई-गई-सी हो गई है बात,
नखत ज्यों आँसू-पुछे दृग, चुप हुई चुपचाप रो रो रात!

रुकेंगे निश्वास मेरे, शान्त होगा चिर-विकल मन भी !

रुकी झंझा, फिर खड़ी दृढ़ सामने गिरि पर असित तरु-पाँत,
नील नभ ऊपर, हृदय ज्यों सह चुका आघात पर आघात !

खुलेगा निस्सीम नभ-सा एक दिन यह शून्य जीवन भी !

यह खुला नभ, यह धुला नभ, खिल रही यह चाँदनी अनमोल,
यह अमृत की वृष्टि, खिलती कुमुदिनी-सी सृष्टि दृग-उर खोल,

खुली कलियों-से खुलेंगे ही हमारे मोह-बन्धन भी !

मन समझाने की बात

जिसने दिया लिया भी उसने,
मन, तुमको क्यों पीड़ा होती ?
टिकता भी कितने दिन प्यारे,
ममता का वह मोमी मोती ?

सह न सका वह उर की ज्वाला,
रह न सका वह बन कर अपना;
गला मोम का मोती, जैसे
ढला दुपहरी का सुख-सपना !

पर क्यों उसका सोच-फ़िक्र, मन
ऐसा ही होता आया है !
सब पर पड़ती सुख-दुख की
यों ही चलती-फिरती छाया है !

क्यों इतने अधीर, भोले मन ?
है ऐसा भी काहे का दुख ?
सुनो हमारी बात, सुनो जी,
अभी बहुत जीवन है सम्मुख !

ऐसा क्या हो गया तुम्हें जो
सोया भाग न फिर से जागे ?
ऐसा क्या खो गया तुम्हारा
सब जग सूना जिसके आगे ?

एक यही क्या, दुख देखोगे
आने-जाने और कई जो !
एक मौत ही है ऐसी
आ एक बार फिर नहीं गई जो !

व्यथा बहुत हैं, और व्यथा की
कथा बहुत हैं इस जीवन में !
हाँ, अभाव के भाव रहे हैं
कभी-कभी सबके ही मन में !

पर सबको खाँसी ज़ुकाम भी
कभी कभी हो ही जाते हैं,
मन, हारी-बीमारी के दिन
कब तक रोज़ याद आते हैं !

व्यथा कथा बनती, फिर वह भी
याद नहीं रहती है सब दिन,
सब दिन जीवन के दिन किसके
कटते निशि-दिन साँसें गिन गिन ?

पति मर जाता, पत्नी जीती,
पत्नी मरती पति पति रहता;
वृद्ध पिता, विधवा मा रहती,
पुत्र छोड़ सबको चल बसता !

जब इतना तक सहता चलता
मृत्युग्रास बनने तक जीवन,
तो इतने-से दुख के कारण
काँप उठे तुम क्यों, मेरे मन ?

चींटी की आँखों से देखी
तुमने महाप्रलय जल-कण में,
की अनन्त की विशद कल्पना
तुमने अचिर क्षुद्रतम क्षण में !

महाशून्य में ताक रहे थे,
था सब कुछ संचित इस भू पर,

देखा ऊपर, देख न पाए
कौन सत्य पर सब के ऊपर !

उठो, मुक्ति-पथ के अनुगामी,
अब न कभी पीछे पग धरना !
मन, अब सोच फ़िकर मत करना
जीवन को निर्धन न समझना !

जिसने दिया लिया भी उसने,
मन, तुमको क्यों पीड़ा होती ?
टिकता भी कितने दिन प्यारे,
ममता का वह मोमी मोती !

आश्वासन

सब खेल ख़तम हो जाएगा,
है कुछ ही दिन की बात और !

मैं जिसका मन रखता आया,
अब रूठ गया मुझसे वह मन;
सब कुछ सहता आया जिसके
कारण, वह ऊब गया जीवन;

पर कुछ ही दिन का नाता है,
है कुछ ही दिन की बात और !

कहने को तो मैंने उसको
चाहा था प्राणों से बढ़कर,
था झूठ किन्तु, हम मर न सके
जब एक दूसरे से छुट कर !

शायद अब आशा पूरी हो,
है कुछ ही दिन की बात और !

मैं कभी न मिलने की कह कर
चल दिया, निरी कायरता थी,
उस पर भी छलना ने खोजे
फिर नए नए संगी-साथी !

वह छलना भी कितने दिन की
है कुछ ही दिन की बात और !

आसरा लिया था ममता का,
आसरा लिया कायरता का,
आँचल छिन गया स्नेह का जब
भर नयन मरुस्थल को ताका,

मरु भी मेरा उड़ जाएगा,
है कुछ ही दिन की बात और !

दुर्दिन न अकेले आते है,—
आया फिर मन में स्वप्न नया,
वह भी टूटा, तृणवत् छूटा,
मुझसे मेरा विश्वास गया !

अब कैसे मन को समझाऊँ—
है कुछ ही दिन की बात और !

जीवन-साथी

फिर फिर रात और दिन आते,
फिर फिर होता साँझ-सवेरा,
मैंने भी चाहा फिर आए
बिछुड़ा जीवन-साथी मेरा,

पर मेरे जीवन का साथी
छूट गया सो छूट गया!

रातों जगा, करवटें बदलीं,
साँसें गिन गिन रात बिताई,
किन्तु न पूरा हुआ अधूरा
सपना, उचटी नींद न आई,

कच्चे धागे-सा सुख-सपना
टूट गया सो टूट गया!

हैं नभ में अनगिनती तारे
रोज़ एक दो टूटें तो क्या?
पर मेरी आँखों का तारा
उसे छोड़ कर मुझे कौन था?

भाग्य, भरे प्याले-सा कर में,
फूट गया सो फूट गया!

अच्छा ही हुआ

अच्छा ही हुआ दूर हो तुम,
टुकड़े टुकड़े हो जाता दिल—
अब देख मुझे इतना उदास !

विद्युत-द्युति थी जिन हाथों में
यम की घनश्याम यवनिका को
क्या हटा न सकते एक बार ?
पर रहने दो, यदि एक बार भी
मुझे देखतीं जीवित यों,
सहसा आँसू की धारा से
भर आते लोचन अनायास !
टुकड़े टुकड़े हो जाता दिल—
अब देख मुझे इतना उदास !

चोरी से आँसू पोंछ
पूछतीं हँस कर तुम,
'कब से मुसकाना छोड़ दिया
बोलो, मधुवन के म्लान कुसुम ?'

चोरी से आँसू पोंछ
पूछतीं तुम हँस कर
'चञ्चल चिड़ियों का-सा स्वभाव, उन्मुक्त भाव
खो दिया कहाँ बोलो, प्रियतर ?'

अन्तर्यामिनि हे मायाविन !
मैं उनका क्या उत्तर देता ?—
असहाय आह बस भर लेता !
पर मुझे निरुत्तर देख, हाय
हँसती, हँसती, हँसती जातीं,
हो जातीं पागल बदहवास !

टुकड़े टुकड़े हो जाता दिल
अब देख मुझे इतना उदास !

तुम जहाँ कहीं भी रहो
रहो अब सदा दूर !
आओ न पास, प्राणाधिक, अब
मत बनो क्रूर !
तुम जिसके प्रति अति दुर्बल थीं,
उसके मुख से कैसे सुनतीं—
'धिक्कार मुझे, मैं वह मिट्टी
इस योग्य नहीं जो मिट्टी का भी बने ग्रास !
'धिक्कार मुझे,
दर दर फिरता, कर फैलाता, ठोकर खाता,
फिर ठहर पैर को सहलाता,
रुकता न हाय, चढ़ता जाता,
कंगाल मंगता छलना का जो बना दास !'
मैं अबस कोसता अपने को,
संज्ञाहत करता अट्टहास ज्यों महानाश !

यदि मुझे देखना चाहो यों, हे कलहासिनि !
आओ यदि विधि से भी निर्दय बनना चाहो,
ओ भग्न हृदय की अधिवासिनि !

पर सहलोगी क्या महानाश का अट्टहास ?
सहलोगी क्या वह महात्रास ?

अच्छा ही हुआ दूर हो तुम,
टुकड़े टुकड़े हो जाता दिल—
अब देख मुझे इतना उदास !

परदेसवासी

मैं प्रवासी और तुम परदेसवासी मीत !

सिन्धु-उर पाताल का मैं
चिर-विकल प्रतियाम चञ्चल,
वक्ष अचला के अचल तुम
चूमते नभ-नील शतदल,

बन जलद, जाते तुम्हारे पास मेरे गीत !

एक क्षण भर शीश धर कर
तुम्हारे उर के सहारे,
आँसुओं में फूट पड़ते
गीत ये सकरुण हमारे,

तड़प नस-नस से निकलती, सिसकता संगीत !

पास हैं जो दूर के-से,
दूर हैं जो पास मेरे,
मन बसे गिरि, पर न रुचता
तीर जो दिन-रात घेरे,

क्या करूँ मैं प्रीत की ऐसी अनोखी रीत !

मीत तुम

दो दिन में बन गए निपट अनजान, मीत तुम !

है कल की-सी बात—रात-से श्याम खुले घन केश-पाश से
घिरे खड़े थे जब तुम मेरे सन्मुख चञ्चल चन्द्रहास-से !
म विमुग्ध तट-सा निश्चल था, जाना कब मैंने—पल भर में
दूर देश बह जाओगे तुम भी लहरी-से निकल पास से !

मैं रह गया शरीर मात्र, मेरे प्राणों के प्राण, मीत तुम !

तुम खंजन-से आए, क्षण भर खेल गए मेरे घर-आँगन !
खंजन-से तुम चटुल, चतुर खंजन-से तुम सुन्दर मनभावन !
दिवा-स्वप्न-सी एक झलक !—फिर दूर देश उड़ गए पलक में,
तुम्हें रिझाने खड़े जहाँ ले रुचिर फूल-फल शत वन-उपवन !

सहज भुला दोगे जीवन की क्या पहली पहचान, मीत तुम ?

फिर अगाध इस स्नेह-सिन्धु का तुम्हें ध्यान भी आएगा क्या ?
जहाँ चोंच दो चोंच पिया जल ध्यान वहाँ का आएगा क्या ?
थाह भला तुम कैसे लेते सागर की ?—तुम नभ के पंछी !
पर कर उसकी याद दृगों में कभी नील घन छाएगा क्या ?

कौन कहे, सुन पाओगे भी मेरे सकरुण गान, मीत तुम !

तुम पर मेरा स्नेह वही था स्वाभाविक है जो अपनों पर,
जिसमें पाना इष्ट नहीं है, देना ही जिसमें श्रेयस्कर !
सीपी के मोती को ममता सौंपा करता ज्यों रत्नाकर,
घन विद्युत को, शशि को सूरज या ज्यों ताराओं को अम्बर,

मैंने दी ममता; मेरे थे कुछ कुछ इसी समान, मीत तुम !

हुआ न तेरा ही कोई

दिन सूरज का, रात चाँद की,
हुआ न तेरा ही कोई !

तारों और परिन्दों का नभ,
अचला सचराचर जल-थल की;
क्षण क्षण पर पहरा भावी का
गिनती जीवन में पल पल की;

करता जो अपनों में गिनती
हुआ न तेरा ही कोई !

शीतल कर धरती की छाती
नदियाँ सागर में मिल जातीं,
नदियों में जल, जल में लहरें
गलबय्याँ डाले बलखातीं;

भरता जो बाँहों में अपनी
हुआ न तेरा ही कोई !

विरही भी मन बहला लेता
गिन सूने नभ के तारों को,
मन की बात सुना लेता वह
सूने घर की दीवारों को;

रे मन ! सुख-दुख की सुनता जो
हुआ न तेरा ही कोई !

अब तो कहा मान, मन, मेरा—
जो तेरा था रहा न तेरा !
देख हुआ सच कहना मेरा—
चाहा जिसको हुआ न तेरा !

कर तेरा-मेरा कितना ही,
हुआ न तेरा ही कोई!

नभ ने बाहु-पाश फैलाया
उल्का को पर रोक न पाया,
टूट पात-सा गिरा धरा पर
मिली न, हाय, दिगञ्चल-छाया;

मृग को भी मिलती कस्तूरी,
हुआ न तेरा ही कोई!

मेरा मन

मेरा चञ्चल मन भी कैसा—
पल में खिलता, मुरझा जाता !

जब सुखी हुआ, सुख से विह्वल;
जब हुआ दुखी, दुख से बेकल;
वह हरसिंगार के फूलों-सा
सुकुमार, सहज कुम्हला जाता !

फूला न समाता ख़ुश होकर
या घर भर देता रो रो कर;
या तो कहता, 'दुनिया मेरी !'
या, 'जग से मेरा क्या नाता ?'

मेरे मन की यह दुर्बलता,
सामान्य नहीं निज को गिनता;
वह अहंकार से उपजा है,
इसलिए सदा रोता गाता !

मैं हूँ विशेष, मैं हूँ विशिष्ट,
कहता विधि से यों वह अशिष्ट;
भ्रमवश चलता ख़ुश ख़ुश हँस कर
चल ज़रा दूर ठोकर खाता !

मैंने बहुतेरा समझाया,
मन अब तक समझ नहीं पाया—
वह भी मिट्टी से ही निकला,
फिर मिट्टी ही में मिल जाता !

इच्छाएँ

चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

अन्तर-तरु से उड़ उड़ जातीं
चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

उड़ती फिरतीं दिशि-दिशि निशि-दिन,
लातीं सयत्न चुन-चुन तृण-तृण,
स्वप्नों के नीड़ सजा जातीं
चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

लगते ये स्वप्न-नीड़ कैसे—
डालों में खिले फूल जैसे !
मधुपों-सी मोहित गुन गातीं
चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

मरकत-प्रवाल के लिए छत्र
मायावश छाया किए पत्र,
पंखों से विजन डुला जातीं
चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

कुछ तूफ़ानी क्षण भी आते
जो जड़ से पेड़ हिला जाते,
तृण उड़ते, वे भी उड़ जातीं
चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

अन्तर-तरु से उड़ उड़ जातीं
चञ्चल चिड़ियों-सी इच्छाएँ !

सुख-दुख

जब तक मन में दुर्बलता है,
दुख से दुख, सुख से ममता है !

पर न सदा रहता जग में सुख,
रहता सदा न जीवन में दुख,
छाया-से माया-से दोनों
आने-जाने हैं ये सुख-दुख !

मन भरता, मन, पर क्या इनसे
आत्मा का अभाव भरता है !

बहुत नाज़ था अपने सुख पर
पर न टिका दो दिन सुख-वैभव,
दुख ? दुख को भी समझा सागर
एक बूँद भी नहीं रहा अब,

देखा जब दिन-रात चीड़-वन
नित कराह आहें भरता है !

मैंने दुख-कातर हो हो कर
जब जब दर दर कर फैलाया,
सुख के अभिलाषी मन मेरे
तब तब सदा निरादर पाया,

ठोकर खा खा कर पाया है—
दुख का कारण कायरता है !

सुख भी नश्वर, दुख भी नश्वर
यद्यपि सुख-दुख सब के साथी,
कौन घुले फिर सोच-फ़िकर में
आज घड़ी क्या है, कल क्या थी !

देख तोड़ सीमाएँ अपनी
जोगी नित निर्भय रमता है !

जब तक तन है, आधि-व्याधि हैं;
जब तक मन, सुख-दुख हैं घेरे;
तू निर्बल तो क्रीत भृत्य है,
तू चाहे, ये तेरे चेरे !

तू इनसे पानी भरवा भर
ज्ञान-कूप, तुझमें क्षमता है !

सुख-दुख के पिंजर में बंदी
कीर घुन रहा सिर बेचारा,
सुख-दुख के दो तीर चीर कर
बहती नित गंगा की धारा,

तेरा जी चाहे जो बन ले,
तू अपना हरता-करता है !

एक तर्क

दुख में रहना सीख सके यदि
तो वह सुख से भी सुन्दर है !

फूल धूल में मिलता ही क्यों
जो माँगे से मिल जाता सुख ?
मिट्टी में मिलना चाहे तो
तू भी खोल देख अपना मुख !

यहाँ न मन की और सुमन की
गति में तिल भर भी अंतर है !

छलना है वह, टिक न सकेगा
मुँह माँगा जो मिल भी जाए !
आत्मा का गुण सत्य, सत्य में
छाया का छल कहाँ समाए ?

सुख-दुख धूप-छाँह का परदा,
जिसके परे सत्य का घर है !

आत्मा में शंका है ? हो; पर
संशय क्या अपने तन-मन में !
इनका भी कल्याण इसी में
मूल नभव को अस्थिर क्षण में !

सुख का पंछी कहाँ टिकेगा ?—
तेरा उर-पिंजर जर्जर है !

सोना या क्षार ?

मुझे बनाओगे सच्चा सोना या क्षार ?

तप्त हथेली में ले ले कर
क्षण क्षण अधिक तपाते जाते,
मेरी छोटी-सी हस्ती को
तिल-तिल नित्य मिटाते जाते,

कौन प्रयोजन इस जीवन का ?—सार या कि निस्सार ?

छीन चुके हो सुख की छाया,
व्यर्थ बताते ममता-माया,
मानस ऊसर-देश बनाया,
रोग-ग्रस्त क्षय होती काया,

आत्मा मुक्त करोगे या बस छीनोगे आधार ?

सदा मग्न मन जिनमें रहता
भंग भग्न हो हुए स्वप्न सब,
एक एक कर विफल हो गए
मेरे उर के चतुर यत्न सब,

टूट गिरे कल्पना-रचित रत्नों के बन्दनवार !

सोना छूता, मिट्टी होता;
अधरों को मधु विष बन जाता;
जहाँ स्नेह-सागर लहराता
हृदय, घृणा का मरु बन जाता;

तिरस्कार से जलते लोचन हँसा जहाँ सत्कार !

कुछ दिन और, और कुछ दिन, फिर
आगे मोह-घृणा के क्रम से
केवल उदासीनता होगी,
फिर सब ढँक जाएगा तम से !

क्या यह सुख समेटने वाले भ्रम का ही उपचार ?

किन्तु मुझे बतलाए कोई
कौन रहस्य छिपा इस क्रम में ?
मुझको कोई राह दिखाए
मन के भ्रम में, विस्मृति-तम में !

सिखलाए मुझको जीवन के कोई रूप-प्रकार !

बुद्धि कल्पना के पंखों को
काट रही जब नियति कतरनी,
कर परकैंच कह रहे हो क्यों
जैसी करनी वैसी भरनी ?

तुम ही जानो अपनी माया, मेरे सिरजनहार !

मेरा गर्व चूर करने को
क्रूर बने हो, रहो क्रूर ही;
भटकाओ पथ की तलाश में
चाहो जब तक रहो दूर ही;

मैं लपेटता मोह-पाश तुम काटो बारम्बार !

आत्मबोध

हृदय में संताप मेरे, देह में है ताप !

कौन है जो बात पूछे ?
कौन है जो अश्रु पोंछे !
अश्रु मेरे सूख जाते किन्तु अपने आप !

वात, पीले पात-सा जो
ले उड़ी थी दे भुलावा,
छोड़ कर चल दी मिला जब
उसे फूलों से बुलावा,
कर लिया हलका हृदय रो झींख कर चुपचाप !

मैं किसे अपना कहूँगा
कह रहा सुनसान भी जब,
'बंधु, जाओ, व्यस्त हूँ
मधुमास स्वागत-काज में अब !'
न हो कोई, मैं सुनूँगा स्वयम् आत्म-प्रलाप !

हो उठा करुणार्द्र सहसा
था कभी निष्ठुर वधिक जो,
आज समझा सुख वही है
यातना जब अत्यधिक हो,
इसी विधि वरदान बनता वाम विधि का शाप !

झूठ साबित हो रहे है
ज़िन्दगी के सब बहाने,
पर भटक कर भूल कर भी
पहुँचता जाता ठिकाने,
हो रहे अपने बिराने, छीजते जाते पुराने पाप !

सांत्वना

हृदय क्यों कातर, विकल, अधीर ?

दुख की मिट्टी में दब जैसे
दम घुटता तेरे जीवन का,
माना, दिव्य बीज भी खोया
मिट्टी में मिट्टी के कन-सा;
पर ऊपर आता प्रसून हँस मिट्टी का उर चीर !

आज रुके जल की गति तेरी
होती ऊब, आ रही मचली,
लहर मरी मानस के भीतर,
बाहर जल के जैसे मछली;
किन्तु हिमाचल के रोके भी रुका न सुरसरि-नीर !

कारागार बना जो जीवन
कभी मुक्ति का पथ भी होगा,
शक्ति मिलेगी, बुद्धि मिलेगी
उतनी, था जितना दुख भोगा;
ताला-कुंजी लिए घूमती प्राण-समान समीर !

अपने से

जितना विनम्र हो, तू कठोर ! तू उतना ही जीवन-शोभन !
बन मत गर्वोन्नत शैल-शिखर, यह श्रेयस्कर
—जो धो दे जग के श्रान्त चरण—तू बन सागर,
भू-भार न बन, ओ मन मेरे, बन रत्नाकर,
तू द्रवीभूत हो जा, निष्ठुर ! तज कर निज जड़ता के बंधन !

तू तपे, क्षुद्र ! तो मूल्यवान हो तेरी मिट्टी का कन कन !
जल अहंकार के ईंधन में; संस्कार जगे
ज्यों लपट उठे, ज्वाला से अंतर्वाह्य रँगे,
प्रत्येक आह से तेरा हृदय-दाह सुलगे,
उड़ जाय धुआँ, रह जाय क्षार, तू जड़ा जा सके ज्यों कुंदन !

तू सहनशील हो यदि, अधीर ! तो मधुर बने तेरा जीवन !
झर जायँ पत्र आशा के सब औ' स्वप्न-सुमन
मुरझा जाएँ, पर फलीभूत हो सूनापन !
फिर श्रीचरणों में पूर्ण पका फल कर अर्पण
सार्थक हो तेरे जीवन का क्षण क्षण जो अब तक था निर्धन !

भेद

बंद कली-सा राज़ न तेरे
खोले से यों खुल पाएगा,
पर धीरज धर धीरे-धीरे
होगा जो आगे आएगा !

जहाँ कर्म-कारण का बंधन
देर सही, अंधेर नहीं है !
शाश्वत नियत नियति की गति में
बंधु, अबेर सबेर नहीं है !

कौन सत्य को खा सकता है ?—
धैर्य शर्त, भय-भ्रान्ति व्यर्थ है !
विश्वासी के पग न डिगें बस—
जहाँ सत्य संशय अनर्थ है !

आएगा जब समय, सत्य ही
हमें जगा भी देगा तत्क्षण,
हम ही उसके हाथ-पाँव है,
सत्य इष्ट, हम मात्र प्रयोजन !

जिज्ञासा

मैं जीवित हूँ, क्या यह मेरी कायरता है ?
या जड़ता है ? या जीवन के प्रति ममता है ?
या यह हाथ किसी का है जो मेरा-तेरा प्रतिपालक है ?

मैं जीवित हूँ, क्या यह मेरे मन का भ्रम है ?
मायावश है ? या यह बस साँसों का क्रम है ?
या भटका कर बुला रहा जो अमिट सत्य का ध्रुवतारक है ?

नींद नहीं आती, क्या कारण सोए भाग नहीं जगते हैं ?
क्या साँसों की ढेरी को ढहते ढहते भी दिन लगते हैं ?
है या कोई लक्ष्य अलक्षित जिससे यह गति भी सार्थक है ?

जीवन-धारा

ऐसी मेरी जीवन-धारा !

जीवन-धारा इस ओर बही
प्रतिकूल किन्तु बहती समीर,
तृण-वसन अन्न-जल भी करते
संकेत उधर ही हो अधीर;

पर मुझको अपना पथ प्यारा !
ऐसी मेरी जीवन-धारा !

उन रवि-शशि आदि ग्रहों का जब
सब का अपना अपना पथ है,
क्या हुआ किसी निज के पथ पर
बढ़ता यदि यह जीवन-रथ है !

अपने पर मेरा क्या चारा ?
ऐसी मेरी जीवन-धारा !

पथ-भ्रष्ट हुआ, मैं नष्ट हुआ,
पर प्रिय था यह विश्वास मुझे,
सब कुछ जाए, सब मिट जाए,
बस आत्मा का दीपक न बुझे !

मैं था न सत्य का हत्यारा !
ऐसी मेरी जीवन-धारा !

इतनी क्षमता मुझमें न हुई—
इस योग्य बनूँ, हूँ क्षमाशील,
पर फिर भी मन मैला न किया—
मैं सहनशील, मैं विनयशील !

रो रो कर पिया न जल खारा !
ऐसी मेरी जीवन-धारा !

कोसूँ औरों को, दोष न दूँ
अपने को, ऐसी थी न बान,
मैं क्षुब्ध-प्राण, निर्वाण दूर
पर परदुख को समझा न त्राण,

जब माँगी मुक्ति मिली कारा !
ऐसी मेरी जीवन-धारा !

आषाढ़

पकी जामुन के रँग की पाग
बाँधता आया, लो, आषाढ़ !

अधखुली उसकी आँखों में
झूमता सुधि-मद का संसार,
शिथिल-कर सकते नहीं सँभाल
खुले लंबे साफ़े का भार,

कभी बँधती, खुल पड़ती पाग,
झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

सिन्धु-शय्या पर सोई बाल
जिसे आया वह सोती छोड़,
आह, प्रति पग अब उसकी याद
खींचती पीछे को, जी तोड़

लगी उड़ने आँधी में पाग,
झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

हर्ष-विस्मय से आँखें फाड़
देखतीं कृषक-सुताएँ जाग,
नाचने लगे रोर सुन मोर
लगी बुझने जंगल की आग,

हाथ से छुट खुल पड़ती पाग,
झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

ज़री का पल्ला उड़ उड़ आज
कभी हिल झिलमिल नभ के बीच,
बन गया विद्युत-द्युति, आलोक
सूर्य शशि उडु के उर से खींच !

कौंध नभ का उर उड़ती पाग,
झूमता डगमग-पग आषाढ़ !

उड़ गई सहसा सिर से पाग—
छा गए नभ में घन घनघोर !
छुट गई सहसा कर से पाग—
बढ़ा आँधी-पानी का ज़ोर !

लिपट लो गई मुझी से पाग,
झूमता डगमग पग आषाढ़ !

फागुन की आधी रात

है रँभा रही बछड़े से बिछुड़ी एक गाय,
थन भारी हैं, दुखते भी हैं !
आता गजनेरी साँड़ भटकता सड़कों पर, चलता मठार,
क्या वही दर्द उसके भी है ?

जा रही किसी घर के जूठे बरतन मलकर
बदचलन कहारी थकी हुई,
चौका-बासन सैना-बैनी में बिता चुकी यौवन के दिन
काटनी उसे पर उमर अभी तो पकी हुई !

बज रहे कहीं ढप ढोल झाँझ, पर बहुत दूर
गा रही संग मदमस्त मजूरों की टोली,
कल काम-धाम करना सबको पर नींद कहाँ—
है एक वर्ष में एक बार आती होली !

इस भाँग-स्वाँग से दूर, बंद कमरे में, चिन्ता में डूबा
दार्शनिक एकरस एकाकी,
है सोच रहा यह जीवन क्या, मैं क्या, मेरी यह आत्मा क्या ?
सब कुछ खोजा, उत्तर न मिला, कुछ भी न बचा मथ कर बाक़ी !

वह दूर और संसार दूर, सब विशृङ्खल, सब छाया-छल,
हैं बिछुड़ परस्पर सुबक रहीं दोनों निर्धन आत्मा-काया !
रोए शृगाल, बोला उल्लू, हिल गई डाल, चौंका कुत्ता
जो भूँक उठा अब देख स्वयम् अपनी छाया !

वासना की देह

विजय की प्यासी, ललकती, चमकती शमशीर !—
ऐसी देह !
बैठने को वीर प्रियतम के अचञ्चल वक्ष में जो
प्रणय-पीड़ाधीर !—
ऐसी देह !
अधर कम्पित, वक्ष कम्पित,
प्यास से पीड़ित, अशंकित, विकम्पित सशरीर
व्याकुल वासना की देह !—
ऐसी देह !

पुलक-दल से लद गई वह देह,
रोम, तृष्णाकुल जगे ज्यों तीर—
वासना-विष में बुझे जो तीर !
अग्निशर-शय्या, पड़ी है वासना की देह,
छिद गई है, बिंध गई है, वासना की देह !—
ऐसी देह !

व्यक्त वाणी से परे है; रुँध गई है पीर,
शून्य संज्ञा—उड़ गया उद्दाम आँधी में विवश ज्यों चीर !
नग्न-नारी-देह, थर थर काँपती वह देह,
वसन-भूषण से परे वह वासना की देह !—
ऐसी देह !

नयन डोले—
नीड़ में ज्यों काँपते भय-ग्रस्त भीत चकोर
देख कर तूफ़ान जो अति वेग से गिरि-वन रहा झकझोर !
विजन के दो वायु-दोलित दीप-दृग ही हैं सजग अम्लान,
घिरे चहुँ दिशि सघन तम-सी,
वासना-तम से विमूर्छित वासना की देह !—
ऐसी देह !

वासना की देह !—
काँपती वह, दूर से आता प्रणय-घन देख,
काँपती वह कामिनी ज्यों दामिनी की रेख !
दामिनी-सी दमकती वह देह,
ऐसी देह !

विकल होकर नाचती पागल प्रतीक्षा,
प्रेम-घन-गर्जन हुआ घनघोर !
अग्नि में जल दे चुकी प्रणयिनि परीक्षा,
नाचता प्रति रोम जैसे मोर !
काम से काँपी अचेतन देह,
केवल-वासना की देह !—
ऐसी देह !

पवन डोली,
काँपता प्रति अंग जैसे तरु-लता का !
पवन डोली,
खुली नभ में श्याम मीनाक्षी पताका !

छा गया तम, छा गए घन, छा गया आकाश,
तड़ित चमकी विसुध जग सब, गुँथ गए युग पाश !
प्रणय-घन के तृषि-तम में नयन मूँदे
दामिनी-सी कामिनी वह वासना की देह !—
ऐसी देह !

ज्येष्ठ का मध्याह्न

ज्यों घेर सकल संसार, कुंडली मार
पड़ा हो अहि विशाल,
आक्रान्त धरा की छाती पर
गुमसुम बैठा मध्याह्न-काल !

मध्याह्न-काल ज्यों अहि विशाल,
केन्द्र में सूर्य—
शोभित दिन-मणि से गर्वोन्नत ज्यों भीम भाल !
कर गरल-पान सब विश्व शान्त,
तृण-तरु न कहीं भय से हिलते—
जीवनीशक्ति, जैसे परास्त हो महामृत्यु से, पड़ी क्लान्त !

अधबुझी चिताओं के मसान के ही समान सर्वत्र शान्ति—
डिगती न तनिक तिल भर भी जो ज्यों भीषण भूधर दुर्निवार !
जब रण समाप्त ज्यों समरभूमि—
है दूर दूर तक धूलि-धूसरित ऊसर का विस्तृत प्रसार !

जड़-जंगम के सोते जग की निश्चल छाती,
क्षय के रोगी के आख़िर दम घुटते दम-सी सब कहीं हुँमस
व्याकुल विषाक्त !
जो गिनी हुई या बची-खुची साँसें हैं, है वे भी दुर्लभ,
अब जगद्धात्री पयविहीन प्रस्वेदग्रस्त ज्यों मृत्युत्रस्त—
रग रग में विष हो गया व्याप्त !

लो, महानाश के विजय-नाद-सी, भस्मभूत सबको करती,
उठती लू ज्यों अहि-फूत्कार !
सामने—डसे मानव-शव-सा नीरव है भव का देह-भार,
नीरव—हत होते आहत के ज्यों तृषित कंठ से निकल न
पाती चीत्कार !

मर रहे प्यास से पक्षी-पशु, पर नहीं रहे अब प्यास बुझाने
को अधीर !
उर वसुन्धरा का फट न सका, भूतल पर से पर लोप हो गया
कहाँ नीर !

पहचान न पाओगे उनको—
अपने प्रेतों-से खड़े हुए हैं रूख सूख ठठरी ऐसे—
भीषण-भुजंग-फुफकार क्षार करती ले गई खींच सब सत जैसे !

धन-धान्य-पूर्ण थी वसुन्धरा,
धमनियों-शिराओं-सी नदियों-सरिताओं को लू सुखा गई जैसे
अजान !
वह गरज-गरज धू-धू करती बहने वाली अहि-फूत्कार—
लू—हर हर कर हरती चलती है विश्व-प्राण !

विषभरी भयावह फूत्कार—
भीषण बेरहम थपेड़ों से सबको पछाड़,
बेबस धरणी की छाती पर चर-अचर सभी को झुलस-जला
नीचे दबोच औ' कूट-कुचल कर मांस-हाड़,
लो, सहसा ठहर गई पल में ज्यों महाशून्य में महानाश
का-सा पहाड़ !

क्या जीवन का अवशेष कहीं ?—
उपहास क्रूर अधरों पर धर, अपलक आँखों में ज्वाला भर,
अजगर अब देख रहा है भव !
(देखा सगर्व) सामने पड़ा—उन्मूल, धूलि में मिले पुराने बरगद-सा
ज्यों निखिल विश्व के पूर्ण पराभव का वैभव !

(देखा सगर्व) सब ओर रेत-सी सूखी हुई घास देखी,
देखा—तरुओं में पत्ते भी तो नहीं रहे !

हरियाली, जो नीलम-प्याली से ढुलका दी नभ ने भू पर,
वह नहीं रही,
बीती बहार के फूलों की तब कौन कहे ?

देखा सगर्व;
चुप बैठ न पाया अब जीवन—
मृतप्राय पड़ की कोंटर से, लो, काँव काँव कर उठा काग !—
'जीवन-तरु का चिर-अजर पत्र,
उसको न जलाती प्रलय-ज्वाल,
उसको न डुबाते प्रलय-सिन्धु,
फिर भस्म उसे कैसे करती मध्याह्न-काल के विषधर की
विषभरी आग ?'—
यों काँव काँव कर उठा काग !

(देखा सगर्व) टूटी-सी एक झोंपड़ी है जिसके समीप
छप्पर छाता चुपचाप एक मरियल चमार !
सूखा शरीर, ऋण-रोग-शोक की कठिन मार से झुकी कमर,
पर गले फूँस के छप्पर को छाता जाता मरियल चमार !
वह भी सँभाल लेगा आतप की विष-वर्षा का कठिन भार !

धीरे धीरे अब बीत चला मध्याह्न-काल !
ढल गई दुपहरी की बेला,
झुक गया सूर्य, झुक गया भाल !
ढल गई दुपहरी की बेला,
चल दिया किसी अज्ञात विवर को अहि कराल !
हो चुका पराक्रम पूर्ण,
हुआ अब दर्प चूर्ण,
अब बीत चला मध्याह्न-काल !

पंखड़ियाँ

पंखड़ियों-सी जीवन-घड़ियाँ !

जब जब सोचा बस मृत्यु शेष,
काँटों में कलियाँ खिल आतीं;
जीवन का क्रम रुकता न लेश,
झरती जातीं, भरती जातीं

जीवन-घड़ियों-सी पंखड़ियाँ !

पंखड़ियों-सी सुधि की कड़ियाँ !

जब मोह रोकता राह और
छिपते जीवन के ओर-छोर,
(सहसा बादल-से फट जाते)
खुलतीं सह विस्मृति की झकोर

सुधि की कड़ियों-सी पंखड़ियाँ !

पंखड़ियों-सी ये पंखड़ियाँ !

उससे ले ज्योति खोलतीं दृग
कलियाँ, जो मिट्टी निपट अंध;
इनकी जड़ जिसकी जड़ता में
उस पर न्यौछावर कर सुगंध

झरतीं पाटल की पंखड़ियाँ !